बालचरित माला—२३

गोपाल कृष्ण गोखले

लेखक—

पं० नारायण रामचन्द्र गुंठे

(प्रो० महाराष्ट्र, दारागंज)

प्रकाशक—

छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग।

प्रथम संस्करण १५००]   अक्टूबर   [मू० ।)

प्रकाशक—
केदारनाथ गुप्त एम० ए०
प्रो० छात्रहितकारी, पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—
रघुनाथ प्रसाद वर्मा
नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग।

गोपाल कृष्ण गोखले

जन्म और वंश परिचय

महाराष्ट्र देश में रत्नागिरी नाम का एक ज़िला है। इसके एक ओर सह्याद्रि पर्वत है और दूसरी ओर अरब सागर। रत्नागिरी ने समय समय पर भारतवर्ष को न्यायमूर्ति रानडे, लोकमान्य तिलक जैसे अनमोल रत्न दिये हैं। इस रत्नागिरी जिले में चिपलून नामका एक ताल्लुका है। इस ताल्लुके के कोतलूक नामक गांव में तारीख ९ मई १८६६ को गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म हुआ था।

गोखले वंश महाराष्ट्र के इतिहास में प्रसिद्ध है। इस वंश में अनेक पराक्रमी पुरुष हुए हैं जिनका स्थान महाराष्ट्र के इतिहास में बहुत ऊँचा है। छत्रपति शाहू महाराज ने गोखले वंश के एक पुरुष को उसकी ईमानदारी और बुद्धिमानी से प्रसन्न होकर 'रास्ते' की पदवी दी थी। 'रास्ते'

का अर्थ है ईमानदारी के साथ ठीक ठीक काम करने वाला। सेनापति बापू गोखले का नाम तो महाराष्ट्र में बच्चा-बच्चा जानता है। पेशवाई के अन्तिम दिनों में अष्टी के युद्ध-क्षेत्र में बड़ी बहादुरी के साथ प्राण देकर बापू गोखले अपना नाम सदा के लिये अमर कर गये।

गोपाल के पिता का नाम कृष्णराव श्रीधर गोखले और माता का नाम सत्यभामा बाई था। कृष्णराव बहुत गरम स्वभाव के थे, साथ ही साथ बड़े ईमानदार और स्वाभिमानी भी थे। बचपन में लोग इन्हें 'वाघोबा' अर्थात् शेर कहकर पुकारा करते थे। कृष्णराव गरीब महाराष्ट्र कुल में उत्पन्न हुए थे लेकिन उनका हृदय अमीर और उदार था। कृष्णराव विद्याभ्यास के लिए कोल्हापूर गये। वहां वे जिस स्कूल में पढ़ते थे उसी स्कूल में न्यायमूर्ति रानडे भी उनके सहपाठी थे। उस समय कौन जानता था कि कृष्णराव का लड़का गोपाल आगे चलकर न्यायमूर्ति रानडे का सुयोग्य शिष्य बनकर अपनी कीर्ति संसार में फैलावेगा। परन्तु विधि-विधान तो ऐसा ही था। गरीबी के कारण कृष्णराव अधिक समय

तक विद्याभ्यास न कर सके और उन्हें कागल संस्थान में नौकरी कर लेनी पड़ी। धीरे धीरे वे कागल के फौजदार हो गये।

कृष्णराव की धर्मपत्नी सत्यभामा बाई अत्यंत सुशील, धार्मिक और पतिभक्त स्त्री थीं। उनका स्वभाव सरल, निष्कपट और उदार था। वह बहुत पढ़ी लिखी तो न थीं परन्तु उनकी स्मरणशक्ति बहुत तेज़ थी। पति-पत्नी में बड़ा प्रेम था। कृष्णराव का मृत्यु के बाद सत्यभामा बाई ने उनकी एक धोती आजीवन अपने पास रक्खी थी इसीसे उनके पति-प्रेम का पता चलता है।

माता-पिता के स्वभाव का प्रभाव गोपाल के चरित्र पर बहुत पड़ा था। दस वर्ष की अवस्था तक गोपाल गाँव के ही शुद्ध और निष्कपट वातावरण में पला था। सृष्टि की सुन्दरता और श्रमजीवी किसानों के कष्टों का उसके कोमल हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह आखिर दिन तक कायम रहा।

विद्याभ्यास

गोपाल के बड़े भाई का नाम गोविन्द था। दोनों भाई साथ ही साथ कागल के एक स्कूल में पढ़ने जाया करते थे। गोपाल बचपन से ही सच बोलना पसंद करता था। एक बार गुरु ने सब बालकों को एक गणित का प्रश्न घर से कर लाने के लिए दिया था। गोपाल के सिवाय और कोई भी विद्यार्थी उस प्रश्न को नहीं कर लाया था। गुरु ने खुश होकर गोपाल की पीठ ठोंकी और उसे पहिले नम्बर पर बैठने के लिये कहा। परन्तु प्रसन्न होने के स्थान पर गोपाल सिसक सिसक कर रोने लगा। सब लड़कों को बड़ा आश्चर्य हुआ और गुरु जी भी बड़े विचार में पड़ गये। उन्होंने गोपाल से पूछा, "बेटा, तुम्हारे रोने का क्या कारण है।" यह सुन कर गोपाल और जोर से रोने लगा। उसने कहा "गुरुजी, मुझे पहिला नम्बर नहीं चाहिए। मैंने यह सवाल दूसरे का मदद से हल किया है। इसलिए मैं पहले नंबर पर बैठने योग्य नहीं हूँ।" यह उदाहरण तो छोटा सा है लेकिन ससे गोपाल के अन्तःकरण का पता चलता है।

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने पर गोविन्द और गोपाल अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के लिए कोल्हापूर गये। स्कूल में वे तीन ही वर्ष पढ़ पाये थे कि उनके ऊपर एक संकट आ पड़ा। उनके पिता कृष्णराव का एकाएक सन १८७९ में देहान्त हो गया। इस समय गोविन्द की अवस्था १८ वर्ष की और गोपाल की १३ वर्ष की थी। कृष्णराव के बड़े भाई अन्ताजी पंत रत्नागिरी में ही रहते थे। सत्यभामा बाई उनके पास चली गईं और गोविन्द को १५) मासिक की नौकरी कर लेनी पड़ी। गोविन्द और गोपाल में बड़ा प्रेम था। गोविन्दराव पिता की मृत्यु के कारण स्वयं उच्च शिक्षा नहीं पा सके थे परन्तु उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि कि गोपाल को उच्च शिक्षा ग्रहण करने का अवसर दिया जाय। उनके निस्वार्थ प्रेम की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है क्योंकि उन्होंने जिस वृक्ष को सींचकर बढ़ाने का निश्चय किया वह फला-फूला और उसकी शीतल छाया में केवल उन्हें ही नहीं किन्तु सब देशवासियों को बैठने का सौभाग्य और आनन्द प्राप्त हुआ। गोविन्दराव, गोपाल के विद्याभ्यास के लिए ८)

महीना भेजते थे और ७) में ही अपनी गृहस्थी चलाते थे।

गोपाल को अपनी गरीबी का ज्ञान था। वह बहुत किफायत के साथ अपना पैसा खर्च करता था। परन्तु वह अपनी गरीबी का पता अपने सहपाठियों को न लगने देता था। एक बार जब कि वह स्कूल के भोजनालय में खा रहा था उसने परोसनेवाले से दही माँगा। परोसनेवाले ने कहा कि जो लोग आठ आना महीना दही के लिये देते हैं उन्हीं को दही परोसा जाता है। गोपाल को अपना भूल मालूम हो गई परन्तु स्वाभिमानी होने के कारण उसने फौरन उत्तर दिया—"कुछ हर्ज नहीं। आठ आने लो और मुझे रोज दही परोसा करो"। गोपाल ने यह कह तो दिया लेकिन उसका खर्च इतना बँधा हुआ था कि एक पैसा भी इधर-उधर खर्च कर देना उसके लिये कठिन था। उसने एक तरकीब निकाली। बजाय दो बार भोजन करने के उसने महीने में कई दिन तक एक ही बार भोजन किया और इस प्रकार पैसे बचा कर दही का इन्तिजाम कर लिया।

गोपाल के विद्यार्थी जीवन की एक और घटना प्रसिद्ध है। उसके दर्जे के एक अमीर लड़के ने एक दिन उससे नाटक देखने का आग्रह किया। गोपाल ने बहुत आनाकानी की पर वह जबरदस्ती उसे ले ही गया। उस दिन उस अमीर लड़के ने ही गोपाल के टिकट के पैसे दिये, लेकिन दूसरे ही दिन वह गोपाल से टिकट के पैसे मांगने लगा। गोपाल यह देखकर चकित हुआ। उसने सोचा था कि जब यह अमीर लड़का नाटक देखने के लिए इतना आग्रह करता है तो टिकट का प्रबंध भी वह अपने पास ही से करेगा। उसका यह ख्याल गलत निकला। पैसे तो गोपाल ने फौरन दे ही डाले लेकिन उसे इस बात की चिन्ता हुई कि महीने भर का खर्चा कैसे संभाला जाय। उसने मट्टी का तेल लेना बंद कर दिया और म्यूनिसिपल-लालटेन की रोशनी में ही पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। खर्च घटाने के लिए वह कभी-कभी अपना भोजन अपने हाथ से बना लेता। अपने बड़े भाई को विशेष कष्ट न हो इस बात का उसे सदैव ध्यान रहता था। वह अपना खर्च हर प्रकार से ८) के भीतर ही भीतर करता था और

उसका हिसाब हर महीने अपने बड़े भाई के पास भेजता था।

छुट्टी के दिनों में दोनों भाई अपनी माता से मिलने के लिए रत्नागिरी चले जाते थे। एक बार होली की छुट्टी में गाँव के सब लड़के इकट्ठे होकर कबड्डी खेल रहे थे। दो पार्टियां बनीं। एक में गोविन्दराव थे और दूसरी में गोपाल। खेल जब खूब जोश में आया तब गोविन्दराव ने धीरे से गोपाल से कहा "सुनो मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ इसलिए मुझसे मत भिड़ो और मुझे जीत जाने दो"। गोपाल ने फौरन उत्तर दिया "भाई देखो, तुम कहो तो मैं खेल छोड़कर चला जाऊं लेकिन मैं अपने साथियों को धोखा नहीं दूंगा"। सच है 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। तभी तो गोपाल को हमेशा झूठ से घृणा थी और सचाई से प्रेम था।

सन् १८८१ में १५ वर्ष की अवस्था में गोपाल ने मैट्रिक की परीक्षा पास की और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह कोल्हापूर के राजाराम कालेज में भरती हो गया। गोपाल कालेज के बहुत तेज़ विद्यार्थियों में तो नहीं था, परन्तु वह एक

अत्यंत परिश्रमी, विनयशील और अध्यवसायी विद्यार्थी था। उसके साथी उसे रट्टू कहा करते थे। गोपाल को पाठ्य पुस्तकों के अध्याय के अध्याय कंठस्थ रहा करते थे। बर्क की "फ्रांस की राज्य-क्रान्ति," मिल्टन की "पेरैडायिज लास्ट" और स्काट की "राकबे" उसे बरज़बान याद थी। इसका फल यह हुआ कि अंग्रेजी भाषा पर उसका पूरा अधिकार होगया। गोपाल कुछ दिन तक पूना के डेक्कन कालेज में पढ़ता रहा और फिर बी० ए० की उपाधि के लिए बंबई के एलफिंस्टन कालेज में भरती हुआ। यहाँ प्रोफेसर हाथर्नवेट के पास अध्ययन कर उसने गणित में विशेष योग्यता प्राप्त की। गोपाल ने बी० ए० की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। उसे अब हर महीने २०) वज़ीफा भी मिलता था। इससे उसके बड़े भाई गोविन्दराव का आर्थिक भार भी कुछ कम हुआ। इस समय गोपाल की अवस्था १९ वर्ष की थी।

बी० ए० हो जाने पर अन्य विद्यार्थियों के समान गोपालराव के हृदय में भी महत्वाकांक्षा लहराने लगी। उनका विचार इंजिनियरिंग अथवा सिविल सर्विस की परीक्षा देने का था परन्तु

धन के अभाव के कारण उन्हें यह विचार छोड़ देना पड़ा। इसी समय उन्हें पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल में ३५) रु० मासिक वेतन पर अध्यापक की जगह मिल गई। पूना के कुछ देशभक्त महानुभावों ने न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना सन् १८८० में की थी। गोपालराव में यह गुण था कि जिस काम को वह हाथ में लेते थे उसे भलीभाँति करते थे। गोपाल राव स्कूल में अँग्रेजी पढ़ाते थे। पाठ्य पुस्तकें उन्हें इतनी कंठस्थ थीं कि क्लास में वे बिना पुस्तक हाथ में लिए ही पढ़ाया करते थे। गोपालराव रोज कुछ पन्ने रट लिया करते थे। उन्होंने अपने एक पड़ोसी से यह शर्त लगाई थी कि वह रोज रटे हुए पृष्ठों को सुन लिया करे और हर एक गलती के लिए एक आना ले लिया करे। बेचारा पड़ोसी हमेशा हाथ मलता ही रह जाता क्योंकि गोपालराव की रटने की शक्ति बड़ी जबर-दस्त थी। गलती का मिलना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। गोपालराव यदि अपना नित्य का पाठ याद करने में कभी पिछड़ आते तो वे स्वयं अपने ऊपर जुर्माना कर लिया करते थे। इस परिश्रम का नतीजा यह हुआ

कि गोपालराव अंग्रेज़ी भाषा धारा-प्रवाह बोलते थे।

इसी समय गोपालराव ने अपने एक मित्र के साथ 'पब्लिक सर्विस सर्टिफिकेट परीक्षा' के विद्यार्थियों को पढ़ाने का काम प्रारंभ कर दिया जिससे उन्हें तीस पैंतीस रुपये की और आमदनी हो जाती थी। साथ ही उन्होंने 'ला कालेज' में भी अपना नाम लिखा लिया। इसीलिए हफ्ते में एक बार हाजिरी देने के लिए वे बम्बई चले जाया करते थे।

गोपालराव को अपने बड़े भाई के उपकारों का सदैव स्मरण रहता था। वे अपने खर्चे के लिए थोड़ा सा रुपया रखकर बाकी सब रुपया अपने बड़े भाई के पास भेज देते थे। उन्हें वह दिन स्मरण था जब गोविन्दराव और उनकी स्त्री अपने सुखों को छोड़कर उनकी पढ़ाई के लिए पैसा भेजते थे। गोविन्दराव ने यदि कभी कहा भी कि गोपाल, अब पढ़ना बंद करो और कहीं छोटी-मोटी नौकरी कर गृहस्थी का भार सम्भालो तो उस समय उनकी स्त्री कहा करती थी कि "तुम अपना पढ़ना कायम रक्खो। मैं

अपने गहनों को गिरवी रखकर तुम्हारी पढ़ाई का प्रबन्ध करूंगी"। गोपालराव के कानों में यह ममतापूर्ण शब्द हमेशा गूंजते रहते और वे हर प्रकार से अपने भाई और भौजाई को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करते थे।

महाराष्ट्र में जाग्रति

जिस समय गोपालराव क़ालेज में पढ़ रहे थे उस समय महाराष्ट्र में एक नवीन जागृति उत्पन्न हो रही थी। विष्णुशास्त्री चिपलूनकर ने अपना "निबन्धमाला" से महाराष्ट्रीय नवयुवकों में चैतन्यता फूंक दी थी। रानडे, तिलक, आगर-कर आदि देशभक्त प्रतापी नेता अपनी अलौकिक प्रतिभा और योग्यता से राष्ट्र को जगा रहे थे। महाराष्ट्र की सूखी नसों में नया खून लहरा उठा था। इन महापुरुषों ने पूने में दक्षिण-शिक्षा-समिति (डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटी) की स्थापना की। इस समिति के सभासदों को २० वर्ष तक ७५) मासिक वेतन पर काम करना पड़ता है और फिर ३०) महीना पेन्शन मिलती है। इसी समिति की देखरेख में न्यू इंगलिश स्कूल

खोला गया था जो आगे चलकर फर्ग्यूसन कालेज के रूप में बढ़ा। बहुत से होनहार नवयुवक इस समिति के सभासद हुए। गोपाल गणेश आगरकर का नाम इन नवयुवकों में विशेष रूप से लेने योग्य है। आगरकर बहुत ही गरीब थे। वे एम० ए० थे और तर्क, न्याय तथा नीतिशास्त्र के अच्छे पण्डित थे। उन्हें उस ज़माने में कहीं भी बड़ी तनख़्वाह वाली नौकरी मिल सकती थी परन्तु उन्होंने गरीबी में ही रहकर देशसेवा करने का बीड़ा उठाया था। उन्होंने एक पत्र में अपनी माता को लिखा था "माता मुझे बड़ी तनख़्वाह वाली नौकरी नहीं चाहिए। मैं गरीब रह कर ही अपना जीवन देश-सेवा में बिताऊँगा।" ऐसे सुन्दर विचार उस समय के देशभक्त नवयुवकों की स्फूर्ति तथा त्याग का परिचय देते हैं।

गोपालराव ने यद्यपि अभी तक अपना ध्येय निश्चित नहीं किया था तथापि तिलक और आगरकर के साथ रहने से उनकी प्रवृत्ति देश सेवा की ओर झुकने लगी। वे अपने मित्रों से अक्सर कहा करते थे कि जब तुम मोटरों में सैर करोगे तब मैं पैदल ही चलूंगा। डेक्कन एज्यू-

केशन सोसायटी के सदस्यों ने गोपालराव से प्रार्थना की वे समिति के सभासद् बन जांय। अपने भाई की सम्मति प्राप्त कर गोपाल राव सोसायटी के सभासद् बन गये।

अब यहां गोपालराव के घरेलू जीवन पर थोड़ा विचार करना आवश्यक है। छोटी उम्र में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण उन के विवाह आदि की जिम्मेदारी उनके चाचा अन्ताजी पर आ पड़ी। पिता की मृत्यु के एक वर्ष बाद उनके चाचा ने उनका विवाह कर दिया। गोपालराव अभी विवाह करना नहीं चाहते थे। यह विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध हुआ और इसका परिणाम भी अच्छा नहीं हुआ। विवाह के कुछ ही समय बाद उनकी स्त्री सावित्री बाई को पाण्डुरोग की बीमारी हो गई। इसलिए सन् १८८७ में उन्होंने दूसरा विवाह किया और अब वे पूने के शनिवार मुहल्ले में उसी मकान में रहने लगे जहां तिलक और आगरकर रहते थे।

———

फर्ग्युसन कालेज

सन् १८८५ में दक्षिण-शिक्षा-समिति ने फर्ग्यूसन कालेज की स्थापना की। गोपालराव पहिले अंग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। अंग्रेजी भाषा पर उनका पूरा अधिकार था फिर भी विद्यार्थियों को जो पाठ पढ़ाना होता था उसका वे स्वयं अच्छी तरह अध्ययन कर लेते थे। 'नेलसन का जीवनचरित्र' पढ़ाने के पूर्व कई बार समुद्र किनारे जाकर जहाज की बनावट और उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य बातों का उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया था। वे अपनी जिम्मेदारी को खूब समझते थे और उसे यथाशक्ति निभाने का प्रयत्न करते थे। आलस्य तो उन्हें छू भी नहीं गया था। जब लोकमान्य तिलक ने फर्ग्यूसन कालेज छोड़ दिया तब उनकी जगह गणित पढ़ाने के लिए गोपालराव नियुक्त किये गये। उन्होंने विद्यार्थियों के लाभ के लिये गणित की एक पुस्तक लिखी जो बहुत लोक-प्रिय हुई और उसका प्रचार भारतवर्ष के सब स्कूलों में हो गया। इस पुस्तक से गोपाल राव को हर महीने

लगभग १२८) की आमदनी हो जाती थी। इतिहास और अर्थशास्त्र गोपालराव के प्रिय विषय थे। कुछ वर्ष बाद वे इन्हीं विषयों को पढ़ाया करते थे। पढ़ाने के सिवाय गोपालराव कालेज के लिये पैसा भी इकट्ठा करते थे। अपने उद्योग से उन्होंने करीब दो लाख रुपया कालेज के लिए इकट्ठा किया। प्रतिज्ञा के अनुसार वे बीस वर्ष तक तन, मन, धन से कालेज की सेवा करते रहे।

गोपालराव को पढ़ाने के साथ ही साथ खेलने का भी शौक था। वे क्रीकेट खेला करते थे। क्रीकेट के बारे में अंग्रेजी में लेख भी लिखा करते थे। तास, शतरंज, बिलियर्ड्स आदि खेल खेलने का भी उन्हें बड़ा शौक था। कभी कभी वे मन ही मन आकाश के तारों से खेला करते थे। वे कहा करते थे कि खेल में भी भारत-वासियों को संसार की किसी भी सभ्य जाति से पिछड़ना नहीं चाहिए।

———

न्यायमूर्ति रानडे से परिचय

गोपालराव को देश-सेवा के लिए तैयार करने का श्रेय न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे को है। रानडे ही गोखले के गुरु, मित्र और मार्गदर्शक थे। महादेव गोविन्द रानडे का जन्म नासिक ज़िले में १८ जनवरी १८४२ को हुआ था। वे एक प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता ने उनको उच्च शिक्षा दी थी। एम० ए० एल० एल० बी० हो जाने पर उन्हें सरकारी नौकरी मिल गई। वे अपनी विद्वत्ता के कारण १८९३ में बंबई हाईकोर्ट के न्यायाधीश नियुक्त हुए। सरकारी नौकर होते हुए भी वे अपना अधिकांश समय देश-सेवा में बिताते थे। कांग्रेस के जन्मदाता ह्यूम साहब ने एक बार लिखा था कि "भारत में यदि कोई व्यक्ति ऐसा था जिसको चौबीस घंटे अपने देश का ही विचार रहता था तो वह व्यक्ति रानडे था"। ह्यूम साहब रानडे को "गुरु महादेव" कहकर पुकारते थे। डाक्टर पोलन कहा करते थे कि रानडे पूना के बिना ताजके राजा हैं। रानडे की विद्वत्ता, देश-भक्ति और कार्यकुशलता के कारण महाराष्ट्र में

उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। विशेषतः पूने और बंबई में तो शायद ही कोई ऐसी देशहितैषी संस्था थी जिसकी स्थापना और उन्नति में उन्होंने सहयोग न दिया हो। रानडे हमेशा होनहार नवयुवकों की खोज में रहा करते थे।

सन १८८९ में गोपालराव गोखले ने पहिली बार महामना रानडे को देखा। वह घटना मनोरंजक है। पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल में उत्सव था। निमंत्रित सज्जनों का स्वागत करने के लिये गोपाल राव जी प्रवेश-द्वार पर खड़े थे। जिनके पास प्रवेश-पत्र था उन्हें वह भीतर जाने देते थे। न्यायमूर्ति रानडे अपना प्रवेश-पत्र घर भूल आये थे इसलिए गोपालराव ने उन्हें रोका। यह देखकर आबा साहेब साठे, जो पूना के एक प्रतिष्ठित पुरुष थे, आगे बढ़े और रानडे महोदय का हाथ पकड़ कर उन्हें आदरपूर्वक भीतर ले गए और गोपालराव को समझा भी दिया। कुछ दिन बाद साठेजी ने ही गोपालराव का परिचय रानडे से कराया। वह दिन धन्य है जिस दिन रानडे और गोपालराव की भेंट हुई। रानडे को सुयोग्य शिष्य मिला और गोपालराव को सद्गुरु प्राप्त हुआ।

रानडे गोपालराव से राजनैतिक विषयों पर लेख लिखवाते थे। यदि गोपालराव का लेख उन्हें पसंद आता तो सिर्फ इतना ही कहते-"हां, इससे काम चल जायगा" और अगर पसंद न आता तो स्वयं उसे लिख डालते। गोपालराव की भाषा में बड़े बड़े शब्दों की प्रधानता रहती थी। रानडे कहा करते थे कि भाषा की अपेक्षा विचारों में अधिक ज़ोर होना चाहिए। न्यायमूर्ति रानडे काम लेने में कुछ भी मुलाहजा न करते थे। बीमारी का बहाना भी उन्हें पसंद न था। वे कहा करते थे कि बुख़ार, सिर-दर्द, ये सब रोग दवा से दूर हो सकते हैं; पर बीता हुआ एक 'बुधवार' कदापि वापस नहीं आ सकता। गोपालराव प्रत्येक बुधवार को गुरु रानडे के यहां जाते थे और राजनैतिक प्रश्नों पर चर्चा किया करते थे।

सार्वजनिक सभा

पूने में एक 'सार्वजनिक सभा' स्थापित की गई थी जो राजनैतिक मामलों में बड़ी प्रसिद्ध थी। गोपालराव इस सभा के मंत्री चुने गए। यह सभा एक त्रैमासिक पत्रिका निकाला करती थी

जिसमें राजनैतिक, अर्थशास्त्र-संबंधी तथा ऐतिहासिक विषयों पर महत्वपूर्ण लेख छपा करते थे। गोपालराव इस पत्रिका के संपादक नियुक्त हुए। पत्रिका का संपादन करने के लिए सभा ने गोपालराव को ४०) रुपये महीना देना चाहा परन्तु उन्होंने वह मंजूर नहीं किया और इस प्रकार युवावस्था में ही त्याग और निस्वार्थ बुद्धि का परिचय दिया।

महामना रानडे की देखरेख में उन्हें इतना काम करना पड़ता था कि कभी कभी सोने तक को अवसर न मिलता था। एक बार पब्लिक सर्विस के बारे में सरकार को एक प्रार्थनापत्र लिखना था। गोपालराव २२ घंटे तक लगातार उस कार्य को करते रहे। इस परिश्रम का फल यह हुआ कि गोपालराव का हाथ सार्वजनिक कार्यों में बढ़ता हो गया और साथ ही साथ उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ती गई। गोपालराव हर एक बात में रानडे की सलाह लेते थे।

कांग्रेस

सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई थी। सार्वजनिक सभा के मंत्री के नाते गोपालराव का

सम्बन्ध राष्ट्रीय सभा से भी बढ़ने लगा। सन् १८८९ में बम्बई कांग्रेस में गोपालराव ने पहली बार भाषण दिया। इस समय इनकी अवस्था २३ वर्ष की थी। राष्ट्रीय सभा के इस अधिवेशन को चार्ल्स ब्राडला के आगमन से विशेष महत्व प्राप्त हुआ था। राष्ट्रीय सभा में प्रवेश होजाने पर गोपालराव को बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्वभाव

गोपालराव बहुत भोलेभाले स्वभाव के थे और उनके मित्र उनके सीधेपन का कभी कभी मज़ाक भी उड़ाते थे। एक दिन बसंत ऋतु में उनके एक मित्र माधवराव के यहाँ पार्टी थी। सार्वजनिक सभा के सभासद एकत्रित हुए थे। माधवराव और वासुदेव राव केलकर, जो फरग्युसन कालेज में प्रोफेसर थे, मलाई की बरफ तैयार कर रहे थे। गोपालराव ने जाकर पूछा "कहिये क्या हो रहा है"? "आइसक्रीम"। एक ने उत्तर दिया। गोपालराव ने कहा, "लाइये थोड़ा मुझे भी दीजिये"। फौरन माधवराव ने आइसक्रीम

के अगल-बगल से नमक का पानी निकाल कर उनके हाथ पर रक्खा और कहा 'इसे चखिये'। गोपालराव ने उसे मुँह में रख कर कहा कि यह तो नमकीन है। उनके मित्रों ने कहा कि शुरू में यह ऐसा ही होता है। बाद में यह मीठा हो जायगा। गोपालराव ने कहा 'अच्छा, यह बात है'! उनका यह भोलापन देख कर सब लोग हँस पड़े। और उनका खूब मज़ाक उड़ाने लगे।

गृह-जीवन

सार्वजनिक कार्यों में गोपालराव इतने फँसे रहते थे कि गृहस्थी की छोटी मोटी बातों पर उन्हें ध्यान देने का अवकाश न मिलता था। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे गृहस्थी से एकदम उदासीन थे। सरकारी रिपोर्टों की छानबीन करने में वे इतने व्यस्त रहते थे कि घर के रुपये पैसों का हिसाब रखना उनके लिए असम्भव था। सन् १८९१ में उनके एक पुत्र हुआ। लेकिन वह १५ ही दिन में चल बसा। इसी समय उनकी माता का भी देहान्त हो गया। माता की मृत्यु से वे अत्यन्त

दुखी हुए। माता के प्रति उनका अगाध प्रेम था। जिस कोठरी में उनकी माता मरी थी उस कोठरी में जब कभी वह जाते थे साष्टांग नमस्कार करते थे। इससे माता के प्रति उनका प्रेम और श्रद्धा प्रकट होती है। सन् १८९६ में उनके एक पुत्री हुई जिसका नाम उन्होंने काशीबाई रक्खा। इसके स्वास्थ्य के विषय में भी वे देखभाल रखते थे। इस समय गोपालराव की आर्थिक दशा अच्छी थी। गोपालराव का स्वभाव उदार होने के कारण वे बहुत खर्चीले थे। उनके यहाँ से कोई भी पुरुष खाली हाथ नहीं लौटता था। उन्हें जो कुछ मिलता था, सब ख़र्च होजाता था।

विलायत की पहली यात्रा

सन् १८९६ ई० में हिन्दुस्तान के खर्च की जांच करने के लिए एक कमीशन बैठाया गया। यह कमीशन वेलबी कमीशन के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमीशन के सामने गवाही देने के लिए भारतवर्ष के बड़े बड़े नेता बुलाये गये थे। बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन और डेक्कन सभा को

ओर से गोपालराव जी का जाना निश्चित हुआ। गोपालराव जी ने खूब ज़ोरों से तैयारी शुरू की। तीन महीने तक वे बराबर न्यायमूर्ति रानाडे की देख रेख में कमीशन के सामने गवाही देने की तैयारी करते रहे। विलायत जाने के पूर्व न्यायमूर्ति रानडे ने उनकी कड़ी परीक्षा ली और उसमें जब वे उत्तीर्ण हो गये तब विलायत के लिए रवाना हुए। रास्ते में जब जहाज 'कैले' पहुँचा तब एक दुर्घटना के कारण गोपाल राव जी की छाती में धक्का लगा जिससे उनको बहुत तकलीफ हुई परन्तु उसकी चर्चा उन्होंने किसी से नहीं की। इंगलैण्ड में जाकर वे पूज्य दादा भाई नौरोजी के यहाँ ठहरे। जब उनकी पीड़ा अधिक बढ़ने लगी तब उन्होंने जहाज की घटना की चर्चा अपने मित्र मिस्टर वाचा से की। वाचा भी कमीशन के सामने गवाही देने के लिए विलायत गए थे। उन्हों ने फौरन डाक्टर बुलवाया। डाक्टर ने यह सलाह दी कि यदि और कुछ दिन तक इलाज न किया जाता तो बीमारी भयानक रूप पकड़ लेती। इस बीमारी में एक अंग्रेज महिला ने गोपालराव की बड़ी सेवा-शुश्रुषा की। दस पंद्रह दिन बाद वे अपना काम करने योग्य होगए।

इंगलैण्ड के वातावरण से गोपालराव जी परिचित न थे। स्त्री-समाज की स्वतंत्रता देखकर वे चकित होगये। पहले पहले उन्हें स्त्रियों से बात-चीत करने में संकोच मालूम होता था लेकिन कुछ दिन बाद वे वहां के रीति-रिवाज से परिचित होगये। वेल्बी कमीशन के सामने उनकी गवाही हुई। गोपालराव ने अपने बयान में यह बतलाया कि हिन्दुस्तान की आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा बड़े बड़े अफसरों की लम्बी तनखाहों और पेन्शनों में खर्च होजाता है। शिक्षा और आरोग्यता के लिए बहुत कम खर्च होता है। फौज का खर्च बहुत भारी है। ब्रिटिश व्यापारियों के फायदे का अधिक ध्यान रखा जाता है। भारत की ग़रीब प्रजा करों के बोझे से दबा जाती है। कमीशन वालों ने गोपालराव के वक्तव्य की कड़ी जांच की। गोपाल- राव ने भी बड़ी योग्यता और गंभीरता के साथ सब प्रश्नों के उत्तर दिये। गवाही की बहुत प्रशंसा हुई। हिन्दुस्तान में उनके मित्रों को बहुत आनन्द हुआ। न्यायमूर्ति रानडे भी अपने शिष्य की योग्यता देख प्रसन्न हुए।

परन्तु इसी समय एक ऐसी घटना होगई कि जिसकी वजह से उनकी कीर्ति कुछ काल के लिए लुप्त हो गई। जिस समय गोपालराव विलायत में थे उस समय बम्बई प्रान्त में, विशेषकर पूना और नासिक आदि स्थानों में, पहिला बार प्लेग फैला। हजारों मनुष्य मर गये। घर के घर बैठ गये। लोगों में सनसनी फैल गई। सरकार को भी बड़ी फिक्र हुई और इस नवीन रोग से बचने के लिए नये नये उपाय ढूँढ़ निकाले गये। प्लेग का टीका जबरदस्ती सब लोगों को लगाया जाने लगा। प्लेग से पीड़ित मरीज़ को उसके मां बाप आदि सम्बन्धियों से हटाकर सरकारी कर्मचारी उसे शहर के बाहर ले जाते थे। यह काम गोरे सिपाहियों को सौंपा गया था। जनता को यह बात बहुत खटकने लगी। स्त्रियों का बड़ी विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा सरकार ने प्लेग से बचने के लिए जो नये नये कानून बनाये उनसे जनता में बड़ा असंतोष फैला। यहाँ तक कि दो योरोपियन आफिसरों का खून हुआ। गोपालराव के मित्रों ने उन्हें इस संबन्ध में कई पत्र लिखे। इंगलैण्ड की जनता का ध्यान इस असंतोष की ओर आकर्षित करने के

लिए उन्होंने मैनचेस्टर गारजियन में एक लेख प्रकाशित किया। इससे इंगलैण्ड में बड़ी हलचल मच गई। बम्बई सरकार से इस मामले की जांच करने के लिए कहा गया, सरकार ने पूने के पाँच सौ बड़े बड़े लोगों के पास पाँच प्रश्न लिख भेजे और प्रत्येक को इस असंतोष के बारे में जो कुछ मालूम था, लिखने का आग्रह किया। परन्तु दुर्भाग्यवश एक भी व्यक्ति गोपालराव जी के उठाये हुए आन्दोलन का समर्थन करने के लिए न मिला। जब कोई भी व्यक्ति आगे नहीं बढ़ा तब बम्बई को सरकार ने गोखले के द्वारा लगाये हुए दोषों को निर्मूल और झूठा बतलाया। गोखले को यह सुन कर बड़ा दुःख हुआ और वे इस बात की जांच करने के लिए भारतवर्ष के लिए रवाना होगये। जब उनका जहाज अदन पहुँचा। तो वहां उनको कई मित्रों के पत्र मिलें जिनमें उन्होंने अपने नाम सरकार से गुप्त रखने की प्रार्थना की थी। गोपाल राव का जहाज जैसे ही बम्बई के बन्दरगाह पर पहुँचा वैसे ही वहाँ के पुलिस कमिशनर उनसे आकर मिले। गोपालराव ने कहा कि मुझे पहले घर जाने दो मैं सबूत इकट्ठा

करूँगा और फिर अपना वक्तव्य प्रकाशित करूँगा। गोपालराव घर आये। जब किसी भी मित्र ने उनका साथ देना स्वीकार न किया तो उन्होंने अपने गुरु रानडे की सम्मति से सरकार से माफी माँगी। अपनी गलती मान लेना ही उन्होंने उचित समझा और साफ साफ शब्दों में माफी मांग ली। यद्यपि माफी माँगने की रीति इंगलैंड में अच्छी समझी जाती है फिर भी भारतवर्ष में गोपालराव जी के माफी माँगने से एक तहलका मच गया। चारों ओर से उनके इस कृत्य की निन्दा होने लगी और लोग मनमानी कहने लगे। इँगलैण्ड के पत्र चुप होगये; परन्तु भारतवर्ष के पत्रों ने गोपालराव जी के इस कार्य की बड़ी कड़ी आलोचना की। गोपालराव जी को अत्यन्त मानसिक क्लेश हुआ परन्तु वे विचलित नहीं हुए। अपनी गलती को मान लेने में ही वे अपना गौरव समझते थे आर फिर उन्होंने अपने गुरु की सम्मति से यह कार्य किया था।

प्लेग का प्रकोप जारी ही था। गोपालराव ने निन्दा अथवा प्रशंसा की परवाह न कर रोगियों की सहायता के लिए कुछ स्वयंसेवक इकट्ठा किये

और वे स्वयं प्रेम और सहानुभूति के साथ उनका सेवा करने लगे। प्लेग आफिसर कर्नल क्रेग ने, जो आगेचल कर हिन्दुस्तान के कमान्डर-इन चीफ हुए, अपनी रिपोर्ट में गोखले की सेवाओं का खूब प्रशंसा की। १८९८ में उन्होंने इस माफी के सिलसिले में एक वक्तव्य प्रकाशित किया। कुछ समय बाद जनता को अपनी भूल मालूम हुई। गोपालराव ने जो कुछ किया वह परिस्थिति का बिचार करते हुए ठीक ही किया। वे अपने मित्रों का नाम बतलाकर स्वयं बच सकते थे परन्तु उन्होंने यह उचित नहीं समझा। उनका जीवन तो परोपकार के लिए था। उनके एक मित्र ने जब उनसे इस संबंध में बातचीत की तब उन्होंने कहा कि "मैं अपने विरोधियों को क्षमा कर सकता हूँ परन्तु इस घटना को भूल नहीं सकता"। अपनी गलती को मान लेना बड़े साहस का काम है। गोपालराव की प्रतिष्ठा विलायत में बढ़ती ही गई। सरकार ने १९०० में एक प्लेग कमीशन बैठाया। गोपालराव इस कमीशन के सभासद नियुक्त हुए।

कमीशन की रिपोर्ट में अपने विचार स्वतंत्र रूप से देते हुए उन्होंने कहा कि प्लेग का टीका

लगवाना अच्छा उपाय है लेकिन साथ ही साथ टीका लगवाने वाले की शक्ति और उम्र का ध्यान रक्खा जाय और टीका सुयोग्य डाक्टर से ही लगवाया जाय।

आदर्श-पुरुष

गोपालराव जी के चरित्र पर जिन महापुरुषों की छाप पड़ी थी उनमें न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे का स्थान सबसे ऊंचा है। १८९९ में जब गोपालराव बंबई कौन्सिल के सभासद् चुने गये तब उनका अभिनंदन करने के लिए पूना में एक सभा हुई। इस सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा, "न्यायमूर्ति रानडे ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनाया। उनके चरणों के पास बैठकर मुझे अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसीलिए मुझे आज यह स्थिति प्राप्त हुई है।" गोपालराव जी की विनयशीलता, नम्रता और गुरुभक्ति का यह सुंदर उदाहरण है।

दूसरा सम्माननीय व्यक्ति जिसका प्रभाव गोपालराव के जीवन पर पड़ा था वह दादाभाई

नौरोजी थे। दादाभाई ने अपना सारा जीवन भारत की सेवा करने में ही व्यतीत किया। वे पार्लियामेन्ट के सभासद हुए और राष्ट्रीय महा सभा का अध्यक्ष-स्थान को भी उन्होंने कई बार सुशोभित किया। दादाभाई को 'स्वराज्य आन्दोलन के पिता' कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ था। गोपालराव, नौरोजी की विद्वत्ता, देशभक्ति, चरित्र और रहन-सहन पर मुग्ध हो गये थे।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और गोपाल राव में प्रारंभ में बड़ी मित्रता थी लेकिन सामाजिक और राजनैतिक विषयों परं तीव्र मतभेद हो जाने के कारण वे एक दूसरे से अलग हो गये। गोपालराव कहा करते थे कि लोकमान्य का ही आदर्श सामने रखकर वे डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटी के आजीवन सभासद हुए थे।

फर्ग्युसन कालेज के प्रिन्सिपाल गोपाल गणेश आगरकर, जिनके साथ गोपालराव ने कई वर्षों तक काम किया, अपने कुछ गुण गोपाल राव को दे गये थे। आगरकर कट्टर सुधारक थे। वे अपने सामाजिक विचारों को जनता के सामने निर्भीकता के साथ रखते थे। पहिले वे 'केसरी'

के सम्पादक थे। लेकिन लोकमान्य तिलक से मतभेद हो जाने के कारण उन्होंने 'सुधारक' नाम का एक नया पत्र निकाला। इस पत्र में मराठी और अंग्रेजी लेख रहा करते थे। सामाजिक विषयों पर आगरकर और राजनैतिक विषयों पर गोपाल-राव लेख लिखा करते थे।

एक और व्यक्ति जिसने अपना प्रभाव गोपाल-राव पर डाला था वह सर फ़ीरोज़शाह मेहता थे। सर फ़िरोज़ शाह 'बंबई के सिंह' तथा 'बंबई के बिना ताज के बादशाह' कहलाते थे। वे उच्च कोटि के वक्ता तथा प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष थे। गोपालराव उनका बहुत आदर करते थे।

——

बम्बई विश्वविद्यालय

सन् १८९८ में गोपाल राव बम्बई विश्व-विद्यालय के 'फलो' चुने गये। विश्वविद्यालय के के मामलों में वे बहुत दिलचस्पी लिया करते थे। लार्ड सिडनहम क्लार्क विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से इतिहास विषय निकाल डालना चाहते थे परन्तु गोपालराव ने इस बात का घोर विरोध

किया। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में इतिहास और अर्थशास्त्र का होना वे आवश्यक समझते थे। उन्हीं की सूचना और सलाह से बी० ए० और एम० ए० में इतिहास का पाठ्यक्रम रखा गया। बी० ए० के कोर्स में राजनीति-शास्त्र का समावेश भी उन्हीं के प्रयत्नों का फल था। कई वर्षों तक वे विश्वविद्यालय में इतिहास, अर्थशास्त्र और अंग्रेजी के परीक्षक रहे। वे सच्चे शिक्षा-प्रेमी थे। उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण भाग शिक्षा-प्रचार में ही व्यतीत हुआ। उनकी यह मनोकामना थी कि भारतवर्ष का हरएक बच्चा लिख-पढ़ सके।

बम्बई लेजिस्लेटिव कौन्सिल

१८९९ में गोपाल कृष्ण गोखले बम्बई प्रान्त की कानून बनाने वाली कौन्सिल के सभासद चुने गये। दो वर्ष तक वे इस कौन्सिल के सभासद थे। इन दो वर्षों में कौन्सिल के सामने दो महत्वपूर्ण बिल पेश हुए। पहला डिस्ट्रिक्ट म्यूनिसिपल बिल और दूसरा लैण्ड रेवेन्यू कोड एमेन्डमेन्ट बिल। माननीय गोखले कई वर्षों तक पूना म्यूनिसिपल

बोर्ड के सभासद रह चुके थे इसलिए उन्होंने म्यूनिसिपल बिल की कड़ी आलोचना की, साथ ही साथ बहुत सी उपयुक्त सूचनायें भी पेश कीं। लेकिन बिल जैसा कि सरकार चाहती थी वैसा ही पास हुआ। लैन्ड रेवेन्यू कोड एमेन्डमेन्ट बिल का विरोध बम्बई के सुप्रसिद्ध नेता सर फीरोजशाह मेहता ने किया। मेहता का कहना था कि बिल पहले जनता के सामने रक्खा जाय और जनता को अपने विचार प्रकट करने का मौका दिया जाय। गोखले ने उनका समर्थन किया और अपने भाषण में कहा कि इस बिल से न गरीब किसानों का फायदा है और न साहूकारों का जो उन्हें रुपया कर्ज देते हैं। फायदा है सरकार का, इसलिये यह बिल स्थगित कर दिया जाय। परन्तु सरकार ने बिल स्थगित करना उचित न समझा। लोकमत का यह अनादर देखकर सर फीरोजशाह कुछ सभासदों के साथ कौन्सिल छोड़ कर चले गये। माननीय गोखले ने भी उन्हीं का अनुकरण किया। तब सरकार ने यह बिल सरकारी सदस्यों की सहायता से पास कर लिया। इस बिल के संबंध में गोखले ने जो विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया उससे उनकी

गणना कौन्सिल के प्रमुख सदस्यों में होने लगी।

रानडे का स्वर्गवास

सरकारी और सार्वजनिक कार्यों में लगातार बहुत परिश्रम करते रहने से गोखले के गुरु रानडे महोदय कई महीने से कुछ बीमार रहते थे। अन्त में उनकी बीमारी बढ़ती ही गई; और १६ जनवरी १९०१ को वे स्वर्गवासी हुए। माननीय गोखले को अपने गुरु की मृत्यु से बहुत धक्का पहुँचा क्योंकि पंद्रह वर्ष तक उन्होंने इस महापुरुष के चरणों के पास बैठकर भारत की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा का अध्ययन किया था। गोखले ने अपने इन पूज्य गुरु की मृत्यु के संबंध में अपने प्रिय शिष्य और मित्र परांजये को पत्र लिखते समय इस प्रकार उल्लेख किया था—"रानडे की मृत्यु से मुझे जो दुःख हुआ है उसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। मुझे प्रतीत होता है कि मानों मेरे जीवन के सामने अचानक अंधकार छा गया है और देश-सेवा करने से जो समाधान प्राप्त होता है उसका उत्तम भाग, इस समय तो कम से

क्रम, चला गया है । मैं जानता हूँ कि यह मेरा कर्तव्य है, जैसा कि और लोगों का भी है, कि हम लड़ते रहें—धीरे ही धीरे सही परन्तु विश्वास और आशा के साथ—ताकि उस झंडे को जिसे रानडे ने फहराया था यथाशक्ति खड़ा रखें; और जिन आदर्शों की पूर्ति के लिये उन्होंने अपना अद्वितीय जीवन दे दिया उन्हें हमेशा सामने रक्खें । मैं नहीं जानता कि मुझ जैसे मनुष्य इस कार्य को कैसे और कितना सफल बना सकेंगे फिर भी प्रयत्न तो अवश्य करना ही चाहिए और तब हम लोगों की जिम्मेदारी पूरी होगी ।"

गोखले ने रानडे की स्मृति में पूना में "रानडे इन्डस्ट्रियल एण्ड एकानामिक इन्सटीट्यूट" नाम की संस्था स्थापन की । इस संस्था के लिए उन्होंने समस्त देश में घूम कर एक लाख रुपया जमा किया । सरकार की सहानुभूति भी प्राप्त की । इस संस्था का उद्घाटन १९१० में बम्बई के गवर्नर सर जार्ज क्लार्क ने किया । देश में औद्योगिक, कलाकौशल-सम्बन्धी तथा वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार करना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य है । गोखले आजीवन इस संस्था के

मंत्री रहे। वास्तव में गोखले ही रानडे के सच्चे स्मारक थे।

गुरु रानडे की मृत्यु के कुछ समय पहले गोखले की धर्मपत्नी का देहान्त हो चुका था। उन्होंने फिर विवाह नहीं किया।

फर्ग्युसन कालेज से बिदाई

सन् १९०२ में प्रोफेसर गोखले फर्ग्युसन कालेज से बिदा हुए। १८ वर्ष तक उन्होंने प्रतिज्ञानुसार दक्षिण-शिक्षा-समिति की तन, मन, धन से सेवा की। लाखों रुपये चंदा इकट्ठा कर कालेज के लिए सुंदर भवन बनवाया। फर्ग्युसन कालेज की गणना देश के सबसे अच्छे कालेजों में होने लगी। उनके प्यारे विद्यार्थियों ने बिदा होते समय उन्हें मान-पत्र दिया। गोखले ने उसका बहुत ही सुंदर उत्तर दिया। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि मुझे कालेज से बिदा होने में बहुत ही दुःख मालूम होता है, लेकिन साथ साथ मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ जिसकी कृपा से मैं उस प्रतिज्ञा का पालन कर सका हूँ जो मैंने युवावस्था की उमंग में की थी। मैंने अपने जीवन का उत्तम भाग इस कालेज की सेवा में बिताया है।

कालेज से बिदा होने का कारण बतलाते हुए उन्होंने एक मनुष्य की कहानी बतलाई जो समुद्र के किनारे अपने परिवार सहित बड़े आनन्द में रहता था। उसकी झोपड़ी सुंदर थी, उसके खेत धान्य से परिपूर्ण थे। उसका परिवार प्रसन्न और सम्पन्न था। दुनिया समझती थी कि वह मनुष्य बहुत सुखी है लेकिन उस मनुष्य को सिवाय समुद्र के और कुछ भी न भाता था। वह हर वक्त समुद्र की ही शोभा देखने में मस्त था। समुद्र की उमड़ती हुई लहरों को देखकर वह प्रसन्न होता था, समुद्र को बिलकुल शान्त देखकर भी वह आनंद मानता था। यहाँ तक कि एक दिन सब घर-द्वार छोड़कर वह नाव में बैठकर समुद्र में घुस पड़ा। दो बार समुद्र की लहरों ने उसे किनारे पर फेंक कर सचेत किया, परन्तु वह कब मानने वाला था! तीसरी बार जब फिर वह चला तब उसकी नाव समुद्र में डूब गई। गोखले ने कहा कि उसी मनुष्य के समान मैं भी कालेज का सुखमय जीवन छोड़कर देश-सेवा के कठिन मार्ग पर जा रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि मुझे बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना

पड़ेगा, परन्तु मैं आशा और विश्वास के साथ कर्तव्य-मार्ग पर डट जाऊँगा। अपने प्यारे विद्यार्थियों को उन्होंने यह उपदेश दिया कि वे सदैव कालेज का ध्यान रक्खें और उसे उन्नत बनाने का प्रयत्न करें।

वाइसराय की कौंसिल

सन् १९०१ में फीरोज शाह मेहता ने वाइसराय की लेजिस्लेटिव कौन्सिल से इस्तीफा दिया। बम्बई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल ने सर्व-सम्मति से उनके स्थान पर गोखले को अपना प्रतिनिधि चुना। मृत्यु पर्यन्त वे इस स्थान पर रह कर सरकार से जनता के अधिकारों के लिए लड़ते रहे। गोखले ने भारत की आमदनी और खर्च के विषय में जो व्याख्यान दिये हैं वे इतने महत्वपूर्ण हैं कि भारतवर्ष के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ आज भी उन्हें पढ़ कर लाभ उठाते हैं। वाइसराय की कौन्सिल में गोखले का पहला भाषण भारत के आय-व्यय के अनुमान-पत्र के सम्बन्ध में २६ मार्च १९०२ को हुआ था। यह भाषण इतना सुंदर और मौलिक था कि सरकारी और गैर-

सरकारी लोगों ने मुक्त कण्ठ से उनकी प्रशंसा की। कौन्सिल के सरकारी सदस्य गोखले के प्रश्नों का उत्तर देने में हिचकिचाते थे। एक बार लार्ड किचनर ने, जो उस समय भारत में कमान्डर-इन चीफ थे, गोखले को अलग बुलाकर पूछा कि फौज के खर्च के विषय में किन किन बातों पर वे विशेष आलोचना करेंगे। गोखले को उस वृद्ध सेनापति पर दया आई और उन्होंने उन बातों पर जोर नहीं दिया जिनकी वे कड़ी आलोचना करने वाले थे। गोखले के भाषणों का प्रभाव दूसरे वर्ष के बजट में साफ नजर आता था।

जिस समय गोखले कौन्सिल के मेंबर हुए उस समय लार्ड कर्जन हिन्दुस्तान के वाइसराय थे। कर्जन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और स्वाभिमानी पुरुष थे; परन्तु भारतवासियों के प्रति उनके हृदय में संकुचित विचार थे। उनके शासन से भारतवासी असन्तुष्ट थे। गोखले ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ इस अभिमानी वाइसराय का मुकाबला किया। कर्जन भी उनका लोहा मान गये। कर्जन ने गोखले की प्रशंसा करते हुए कहा था कि

ईश्वर ने गोखले को असामान्य विद्वत्ता प्रदान की है और उन्होंने इस विद्वत्ता का उपयोग अपने देश के लिए खुले दिल से किया है। मुझे उनसे लोहा लेने में बड़ा आनन्द मिलता है। सन् १९०४ में गोखले को सी० आई० ई० की पदवी देकर लार्ड कर्जन ने उनका गौरव किया था।

गोखले की १९०८ की बजट स्पीच सुनकर लार्ड मिन्टो ने कहा था कि इंगलैंड में बहुत कम ऐसे पुरुष मिलेंगे जो ऐसा उत्तम भाषण दे सकें। भारत के अर्थ-मंत्री सर एडवर्ड बेकर ने कहा कि क्या ही अच्छा होता यदि मेरे बाद गोखले इस पद पर नियुक्त किये जाते। सर जेम्स मेस्टन ने गोखले की तुलना इंगलैंड के प्रसिद्ध प्रधान-मंत्री ग्लैडस्टन से की थी। इन बातों से पता चलता है कि गोखले बहुत बड़े राजनीतिज्ञ थे। गोखले ने यह सिद्ध कर दिया था कि यदि भारत-वासियों को मौका दिया जाय तो वे भी अंग्रेजों की तरह अपने देश का शासन भलीभांति कर सकते हैं।

भारत-सेवक-समिति

माननीय गोखले की यह हार्दिक इच्छा थी कि कुछ नवयुवक ऐसे तैय्यार किये जावें जो निस्वार्थ

बुद्धि से भारत-माता की सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर दें। जनता की सेवा ही ईश्वर की सेवा है यह भाव वह नवयुवकों के अंतःकरण में अंकित करना चाहते थे। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने पूना में १२ जून १९०५ को भारत-सेवक-समिति (सर्वेन्टस आफ इन्डिया सोसाइटी) की स्थापना की। राजनैतिकशिक्षा और आन्दोलन, जातीय एकता, दलित जातियों का सुधार, स्त्री-शिक्षा, और दीन दुखियों की सेवा इत्यादि इस समिति के मुख्य उद्देश हैं। समिति के हर एक सभासद को निम्नलिखित सात प्रतिज्ञायें करनी पड़ती हैं—(१) मेरे हृदय में पहला स्थान देश का होगा और उसकी सेवा में मैं अपना सर्वस्व त्याग कर दूँगा। (२) देश की सेवा करने में मैं अपने व्यक्तिगत लाभ की चेष्टा न करूँगा। (३) मैं भारतवासी मात्र को अपना भाई समझूंगा और जाति और धर्म के भेदभाव को छोड़कर सबकी उन्नति के लिए काम करूँगा। (४) समिति मुझे अपना और अपने कुटुंब का पालन पोषण करने के लिए जो धन दे सकेगी उसी से संतुष्ट रहूँगा। मैं अपने

समय का कोई भाग धन कमाने में व्यतीत नहीं करूंगा। (५) मैं अपना जीवन पवित्रता से व्यतीत करूंगा। (६) मैं व्यक्तिगत झगड़ों में नहीं पड़ूँगा। (७) मैं समिति के नियमों का हमेशा सावधानी के साथ पालन करूँगा और समिति के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उत्साह पूर्वक सदैव प्रयत्न करूंगा। कोई बात ऐसी नहीं करूँगा जो समिति के उद्देश्यों के विरुद्ध हो।

बहुत से सुयोग्य विद्वान इस समिति के आजीवन सदस्य बने और उन्होंने देश की बहुत सेवा की। आज भी यह समिति देश में हर प्रकार की उन्नति का प्रयत्न कर रही है। गोखले ने यह समिति खोलकर देश पर बड़ा भारी उपकार किया है। यह समिति ही उनका सच्चा स्मारक है।

कांग्रेस के सभापति

लार्ड कर्जन के शासन से देश में जो अशान्ति फैली थी उसकी चर्चा करने के लिए गोखले कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर विलायत गये थे। वे पचास दिन तक इंगलैंड में रहे और इस बीच में उन्होंने ४५ व्याख्यान दिये। इससे उनकी

काम करने की धुन का पता लगता है। वे काम के आगे अपने शरीर की परवाह नहीं करते थे। उन्हें अपना कर्तव्य प्यारा था। और दिन रात उसी में वे लगे रहते थे। उनके कार्य से प्रसन्न होकर उनका गौरव बढ़ाने के लिए भारतवासियों ने उन्हें राष्ट्रीय महासभा का सभापति चुना। इस वर्ष राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन काशी में हुआ। गोखले जी ने सभापति की हैसियत से जो व्याख्यान दिया वह बड़ा ही ओजस्वी और सारगर्भित था। वाइसराय कर्जन के शासन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा:–

"संसार परिवर्तन शील है। प्रत्येक वस्तु का अन्त होता है। यह निर्विवाद सत्य है। लार्ड कर्जन के शासन का भी अन्त हो गया। सात वर्षों से हम उस अद्भुत व्यक्ति की ओर कभी प्रशंसा, कभी विस्मय, और अधिकतर क्रोध और दुःख भरे नेत्रों से देख रहे थे। अब यह अनुमान करना भी कठिन है कि वास्तव में परिवर्तन हुआ है। इस शासन की तुलना करने के लिए हमें मुसलमानी राज्य के बादशाह औरंगज़ेब की याद आती है।" महामना गोखले ने

अपने भाषण में बंगभंग का घोर विरोध किया और स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। कौन्सिलों के सुधार के विषय में बहुत सी बातें उपस्थित की। भारत के सब जिलों में एडवाइ-सरीबोर्ड स्थापना करने की आवश्यकता बतलाई। सरकार का ध्यान न्याय और शासन विभाग अलग करने की ओर आकर्षित किया। सेना का खर्च कम कर उस धन को शिक्षा के कार्य में लगाने की सलाह दी।

राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन समाप्त होने पर गोखले जी को फिर विलायत जाना पड़ा। बंग विच्छेद के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत काम किया। बड़े बड़े आफिसरों और पार्लियामेंट के सदस्यों से मुलाक़ात की और भारतवासियों के प्रस्तावों को उनके सामने रक्खा। उन्हें इस कार्य में बहुत सफलता मिली।

उत्तर भारत में भ्रमण

सन् १९०६ में राष्ट्रीय महासभा का अधि-वेशन कलकत्ते में हुआ। इस अधिवेशन के सभापति भारत के वृद्ध पितामह दादाभाई

नौरोजी थे। इसी समय कांग्रेस में दो दल होगए थे जो आगे चलकर गरम दल और नरम दल के नाम से प्रसिद्ध हुए। गरम दल के नेता थे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और नरम दल के नेताओं में गोखले जी का प्रमुख स्थान था। १९०७ में कांग्रेस में जो फूट हुई थी उसका बीजारोपण कलकत्ते ही में हुआ था। परन्तु दादाभाई के प्रभाव और कार्य-कुशलता के कारण वह प्रसंग कुछ दिनों के लिए टल गया। नौरोजी ने अपने भाषण में कहा कि कुछ लोग भारतवर्ष के मुख्य स्थानों में घूमकर लोगों में राजनैतिक जागृति पैदा करें। इस आदेश की पूर्ति के लिए गोखले ने कलकत्ता कांग्रेस के समाप्त होते ही उत्तर भारत में भ्रमण शुरू कर दिया। उन्होंने संयुक्तप्रान्त तथा पंजाब के खास खास नगरों में 'हिन्दू मुसलिम एकता' 'स्वदेशी' 'विद्यार्थियों के कर्तव्य' तथा राजनैतिक परिस्थिति पर व्याख्यान दिये और लोगों में उत्साह उत्पन्न किया। गोखले जहां भी जाते थे वहाँ उनका धूमधाम से स्वागत होता था। इस दौरे में उन्होंने जो व्याख्यान प्रयाग में दिया था

वह चिरस्मरणीय है। अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा–"मातृभूमि के प्रति मेरी महत्वाकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं है। मैं अपने देशवासियों को अपने देश में उसी अवस्था में देखना चाहता हूँ जिस दशा में दूसरे लोग अपने देश में हैं। मैं भारतवर्ष को राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, तथा कलाकौशल की दृष्टि से संसार के महान् राष्ट्रों में उच्च स्थान पर देखना चाहता हूँ, यही मेरी महत्वाकांक्षा है।"

बड़े भाई की मृत्यु

२१ जून १९०७ को गोखले के बड़े भाई गोविन्दराव का स्वर्गवास हो गया। इस दैवी घटना से गोखले के कोमल अन्तःकरण पर बहुत आघात पहुँचा। गोविन्दराव ने आजीवन गरीबी में रहकर अपने छोटे भाई के पढ़ाई के लिए जो कष्ट उठाये थे और पिता की मृत्यु के अनन्तर जिस प्रेम के साथ उसका पालन पोषण किया था उसकी स्मृति गोखले के चित्त में सदैव बनी रहती थी। परन्तु वे देश के काम में इतने

व्यस्त थे कि उनके पास रोने के लिये समय न था। अतः वे अपने काम में लग गये।

सूरत कांग्रेस

वङ्गभंग के कारण बङ्गाल में १९०५ में जिस प्रकार हलचल मची थी उसी प्रकार १९०७ में जमीन पर कर बढ़ाने के कारण पंजाब में भी बड़ी हलचल मच गई थी। लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह जैसे देश-भक्त १८१८ के रेग्यूलेशन के अनुसार बिना किसी मुकदमे के देश से निर्वासित कर दिये गये। इससे पंजाब में और भी सनसनी फैल गयी। गोखले जी ने इस कार्य की तीव्र आलोचना की और पंजाबियों का पक्ष लेकर लालाजी की रिहाई के लिये प्रयत्न किया। छः महीने बाद लाला जी छोड़ दिये गये। लाला जी के छूटने पर गरमदल वालों ने जो राष्ट्रीय पक्ष के नाम से प्रसिद्ध थे लाला जी का नाम सूरत की कांग्रेस के सभापति के लिए पेश किया। नरम दल वाले रासबिहारी घोष को सभापति बनाना चाहते थे। सुलह की बहुत बातचीत हुई परन्तु भेद भाव

बढ़ता ही गया। अन्त में स्वयं लालाजी ने कहा कि मैं सभापति होने के लिए तैयार नहीं। उन्होंने दोनों दलों को मिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह निष्फल हुआ। दिसम्बर १९०७ के अन्तिम सप्ताह में सूरत में लोग कांग्रेस के लिए जमा हुए। कांग्रेस के खुले अधिवेशन में जब रासबिहारी घोष का नाम सभापति के पद के लिए प्रस्तावित किया गया तब राष्ट्रीय पक्ष के नेता लोकमान्य तिलक ने अपने दल की बात कहनी चाही, परन्तु उन्हें कहने का मौका न दिया गया। लोकमान्य ने भी अपनी बात कहे बिना मंच से हटने से इनकार किया। इस पर बड़ा हुल्लड़ मचा। कुर्सियाँ चलने लगीं। लोकमान्य पर भी एक व्यक्ति टूट पड़ा। परन्तु माननीय गोखले ने फ़ौरन बीच में पड़कर उनकी रक्षा की। एकाएक एक जूता फ़ीरोज़शाह मेहता को लगता हुआ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पास जा पहुँचा। गोखले यह देखकर गुस्से से लाल हो गये। लोग सभा छोड़ कर चले गये। इस प्रकार सूरत की तूफानी कांग्रेस समाप्त हुई। गरम दल और नरम दल के भिन्न-भिन्न मार्ग हो गये।

मार्ले-मिन्टो-सुधार

वाइसराय की कौन्सिल में १९०८ के बजट पर बहस करते हुए गोखले ने सरकार को चेतावनी दी थी कि इस समय देश की परिस्थिति कठिन है। जो कुछ राजनैतिक सुधार सरकार भारतवर्ष को देना चाहती है वे शीघ्र ही दे दिये जांय, नहीं तो असन्तोष की लहर देश में बढ़ती ही जायगी। इसी साल गोखले जी विलायत गये। कौन्सिलों के सुधार के सम्बंध में वे भारत-मंत्री लार्ड मार्ले से कई बार मिले। लार्ड मार्ले पर उनके भाषण का अच्छा प्रभाव पड़ा। वाइसराय मिन्टो और भारत-मंत्री मार्ले के शासन-काल में भारतवर्ष को जो सुधार मिले हैं उन पर गोखले के मन की छाप है।

अनिवार्य प्रायमरी शिक्षा का बिल

गोखले ने वाइसराय की कौन्सिल में देश से सम्बन्ध रखने वाली हर एक बात पर प्रकाश डाला था। शिक्षा प्रचार उनके जीवन का सब से बड़ा ध्येय था। उनका कहना था कि लोग जब सुशि-क्षित हो जायेंगे तब वे अपने अधिकारों को अच्छा

तरह समझ सकेंगे और उनको प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। सन् १९१० में उन्होंने कौन्सिल में अनिवार्य प्रायमरी शिक्षा का बिल पेश किया और उस पर एक कमीशन बैठाने की सिफारिश की। उनका बिल पास नहीं हुआ, परन्तु उन्होंने प्रयत्न नहीं छोड़ा। देश भर में घूम कर उन्होंने जनता का ध्यान शिक्षा-प्रचार की ओर आकर्षित किया। जगह जगह 'शिक्षा-संघ' स्थापित किये। १९१२ में उन्होंने फिर यह बिल कौन्सिल के सामने रक्खा। उस समय लार्ड हार्डिंज हिन्दुस्तान के वाइसराय थे। गोखले जी ने इस अवसर पर जो भाषण दिया वह बार बार पढ़ने योग्य है। लार्ड हार्डिंज ने उनके भाषण की बड़ी प्रशंसा की। यद्यपि बिल पास नहीं हुआ, लेकिन उससे जनता में बहुत जागृति फैल गई।

दक्षिण अफ्रिका की यात्रा

दक्षिण अफ्रिका में प्रवासी भारतवासियों की बहुत शोचनीय दशा थी। उनको मनुष्योचित अधिकार प्राप्त नहीं थे। उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता था। शर्तों से जकड़े हुए गरीब भारतीय

मजदूरों की दुर्दशा का कोई अन्त न था। महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रिका की सरकार से उनके अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। माननीय गोखले ने वाइसराय की कौन्सिल में इस संबंध में आवाज़ उठाई। इतना ही नहीं, सन् १९१२ में वे दक्षिण अफ्रिका के लिये रवाना हुए। महात्मा गांधी ने उन्हें बुलाया था। भारत-सरकार ने भी उन्हें इस कार्य के लिए प्रोत्साहन दिया। ब्रिटिश अफ्रिका की सरकार ने उनका एक राजदूत के समान स्वागत किया। दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भारतीय गोखले जी का दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए। गोखले ने ब्रिटिश अफ्रिका के मुख्य मुख्य नगरों में घूम कर व्याख्यान दिये। वहां की परिस्थिति को भली भाँति समझ लिया। अफ्रिकन सरकार से बिनती की कि वह प्रवासी भारतीयों के साथ अच्छा बर्ताव करे। गरीब मजदूरों के ऊपर सालाना तीन पौंड का जो टैक्स लगाया था वह हटा दे। यूनियन सरकार ने गोखले जी को जबानी आश्वासन दिया कि भविष्य में भारत-वासियों के साथ अच्छा बर्ताव किया जायगा और मज़दूरों पर लगाया हुआ टैक्स भी रद्द कर दिया।

जायगा। गोखले जी अफ्रिका में तीन सप्ताह थे, उन्होंने इस बीच में वहाँ की सरकार और भारतवासियों के कठिन प्रश्नों को सुलझाने का बहुत प्रयत्न किया। महात्मा गांधी इस दौरे में गोखले जी के साथ थे। उन्होंने गोखले जी की बहुत सहायता की। गांधी जी गोखले को अपना राजनैतिक गुरु मानते हैं। महात्मा गांधी ने गोखले की प्रशंसा में इस प्रकार लिखा है—"राजनैतिक कार्यकर्ताओं में जितने गुण होने चाहिएँ मैंने सब उनमें पाये—बिल्लौर की सी स्वच्छता, मेमने की सी नम्रता, शेर की सी वीरता और दया तो इतनी कि वह एक प्रकार का दोष हो गई थी। राजनैतिक क्षेत्र में वे मेरे लिए सब से ऊँचे आदर्श थे और अब तक हैं।" माननीय गोखले भी गांधी जी पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उन्होंने एक बार व्याख्यान देते हुए कहा था—"मैं अपने जोवन में गांधी जी के अतिरिक्त केवल दो ही व्यक्तियों को जानता हूँ जिन्होंने मेरे अंतःकरण पर नैतिक विजय पाई है—एक तो भारत के वृद्ध पितामह दादा भाई नौरोजी और दूसरे मेरे परमपूज्य गुरु न्यायमूर्ति रानडे।" दक्षिण अफ्रिका से लौट आने पर मान-

नीय गोखले का बम्बई में शानदार स्वागत हुआ। गोखले ने अफ्रिका के प्रवासी भारतवासियों की परिस्थिति पर कई व्याख्यान दिये। कांग्रेस ने भी इस सम्बन्ध में सहानुभूति के प्रस्ताव पास किये। गोखले के अफ्रिका से लौटने के कुछ ही समय बाद महात्मा गांधी ने वहाँ सत्याग्रह आन्दोलन शुरू कर दिया। अफ्रिका की सरकार ने गोखले को दिये हुए वचनों का पालन नहीं किया। माननीय गोखले ने देश में भ्रमण कर लाखों रुपये इकट्ठा किये और गांधी जी को अत्यन्त विकट परिस्थिति में बड़ी सहायता की। सत्याग्रह आन्दोलन सफल हुआ। अफ्रिका की सरकार ने इण्डियन रिलीफ एक्ट पास किया जिससे परिस्थिति कुछ सुधर गई। महात्मा गांधी जब भारत वापस आये तब उन्होंने कहा कि गोखले की ही स्फूर्ति, प्रोत्साहन और सहायता से हम लोगों ने इतने दिनों तक सत्याग्रह की लड़ाई लड़ी।

पब्लिक सर्विस कमीशन

सरकार ने १९१२ में एक पब्लिक सर्विस कमीशन बैठाया। लार्ड इस्लिंगटन इसके अध्यक्ष

नियुक्त किये गये । इस कमोशन के कुल १२ सभासद् थे जिनमें माननीय गोखले के अतिरिक्त दो और भारतीय थे। बड़ी बड़ी सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में यह कमीशन बैठाया गया था। भारतवासी उच्च पदाधिकारी बनाने योग्य हैं अथवा नहीं इस बात की जाँच भी यह कमीशन करनेवाला था। यह कमीशन भारतवर्ष और ब्रह्मदेश में घूमा। बड़े बड़े सरकारी और गैर सरकारी लोगों ने इजहार दिये। माननीय गोखले कमीशन के काम में दिन रात फँसे रहते थे। उन्हें सोने के लिए मुश्किल से दो चार घंटे मिलते थे। रात को दो-तीन बजे तक वे कमीशन का काम करते थे। कमीशन के सामने गवाही देने वालों की वे बड़ी कड़ी परीक्षा लेते थे। उनके प्रश्न बड़े मार्मिक होते थे। कमीशन के साथ उनको दो बार इग्लैंड जाना पड़ा। उनका स्वास्थ्य दिन-रात गिर रहा था, परन्तु उन्होंने काम नहीं छोड़ा। उनका जन्म तो मरते दम तक भारत की सेवा करने के लिए हुआ था। इंग्लैंड के डाक्टरों ने उन्हें सचेत कर दिया कि यदि वे इसी प्रकार परिश्रम करते रहेंगे तो अधिक दिन जीवित रहना बहुत कठिन है।

परन्तु गोखले के मन पर इस चेतावनी का कुछ भी असर न हुआ। "यह कर्मभूमि है, विश्रान्ति का स्थान और कहीं है", पूज्य दादा भाई के इस उपदेश का वे हमेशा पालन करते थे। इसी समय उनको के० सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की गई, परन्तु उन्होंने उसे धन्यवादपूर्वक अस्वीकार किया। वे 'सर' गोपाल कृष्ण गोखले बनना नहीं चाहते थे। सेवक बनकर ही वे जीवन व्यतीत करना चाहते थे। इग्लैंड में जब उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया तब वे प्रिय भारतभूमि के लिए रवाना हुए। चलते समय उन्होंने श्रीमती सरोजिनी देवी से कहा कि यह आखरी मुलाकात है। मैं अब थोड़े दिन का मेहमान हूँ।

मृत्यु

माननीय गोखले नवम्बर १९१४ में भारतवर्ष लौट आये। भारत-सेवक-समिति के भवन में हो वे हमेशा रहते थे। उनको रोग ने घेर लिया था, लेकिन इस पर भी उनको काम से फुरसत न मिलती थी। पब्लिक सर्विस कमीशन और दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भारतवासियों की चिन्ता उन्हें

दिन रात लगी रहती थी। इसके अलावा योरप में महायुद्ध छिड़ गया था। देश की परिस्थिति बदल रही थी। लोकमान्य तिलक भी कारागृह से मुक्त हो गये थे। नरम-दल और गरम दल में सुलह की बातचीत शुरू हो गई थी। ऐसे समय में गोखले बीमार होते हुए भी दिन-रात काम करते रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी बीमारी बढ़ती हो गई १२ फरवरी १९१५ को महात्मा गांधी उनसे मिलने के लिए पूना आये। उन्होंने गांधी जी का स्वागत किया। माननीय गोखले की यह इच्छा थी कि उनके बाद महात्मा गांधी भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष बनें। परन्तु गांधी जी इसके लिए तैयार नहीं हुए। गोखले ने गांधी जी से कहा, "आप देश भर में भ्रमण कीजिए। देश की दशा का अध्ययन कीजिए और यदि आपके विचार समिति के विचारों से मिलें तो आप ही इस समिति का अध्यक्ष-पद स्वीकार कीजिए।" महात्मा गांधी गोखले जी की आज्ञा लेकर देश में भ्रमण करने के लिए चले गये।

माननीय गोखले मृत्यु-शैय्या पर पड़े थे। लोगों से अपनी सेवा-शुश्रूषा कराना उन्हें

नापसंद था। एक बार जब वे अपने बिछौने पर बैठे हुए थे, उनके एक मित्र ने यह सोचकर कि कहीं कमज़ोरी के कारण वे गिर न जाँय, उनकी पीठ को पकड़ लिया। गोखले ने कहा, "क्या मैं गिर रहा हूँ? मैं अभी अच्छा हूँ। आप कष्ट न करें।" गुरुवार के दिन उन्होंने अपने मित्रों को पत्र लिखे। शुक्रवार के दिन उनकी तबीयत बहुत खराब हो गई। वे अपने हाथों से एनिमा न ले सके। उसी समय उन्होंने कहा—"जो चाहे सो करो, यह शरीर अब चल नहीं सकता"। दोपहर के समय उन्होंने अपने सब सम्बन्धियों तथा इष्ट-मित्रों को अपने पास बुला लिया और उनसे बड़े प्रेम के साथ दो-चार बातें की। संध्या होते ही उन्हें अपने अपने घर जाने के लिए कहा। लोग हट गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा, "क्या सब लोग चले गये?" उत्तर मिला "नहीं।" थोड़ी ही देर बाद उनकी शक्ति क्षीण होने लगी। उनकी आवाज धीमी पड़ गई। यह देखकर उनके भानजे रोने लगे। गोखले ने उस अवस्था में भी उनसे कहा कि अगर रोना है तो यहाँ से चला जाना ही अच्छा। धीरे धीरे रात हो गई। मृत्यु भी अपना कदम बढ़ाने लगी।

चारो ओर उदासीनता फैलने लगी। आठ बजे उन्होंने अपने प्रिय मित्र हरिभाऊ आपटे से कहा, "अब मुझे आरामकुर्सी पर बैठाओ"। उनके मित्रों ने उन्हें आरामकुर्सी पर बैठाया। एक बार उन्होंने सब की ओर प्रेम से देखा और क्षीण स्वर में कहा—"इस लोक का आनन्द तो मैंने ले लिया। अब उस लोक का आनन्द जाकर लेना है।" इसके बाद उन्होंने एक बार आकाश की ओर देखा और फिर सब को नमस्कार किया। और आँखें बंद कर लीं। १९ फरवरी १९१५ को रात के दस बज कर बीस मिनट पर गोखले इस संसार से सदा के लिए बिदा हो गये। उनकी पवित्र आत्मा परमात्मा में विलीन हो गई। एक महापुरुष संसार से चल बसा। चारों ओर अंधकार छा गया। सारे देश में बिजली की गति से यह शोक-समाचार फैल गया। गोखले का मृत देह पुष्पहारों से विभूषित कर समिति के भवन में दर्शनार्थ रक्खा गया। उनके प्रिय विद्यार्थी, फर्ग्युसन कालेज के प्रोफेसर, मित्र, सम्बन्धी तथा पूने के निवासी उनके दर्शन के लिए टूट पड़े। बम्बई और आसपास से हजारों लोग उनके अन्तिम दर्शन के

लिए दौड़ आये। लोकमान्य तिलक समाचार पाते ही सिंहगढ़ से मोटर में आये। दूसरे दिन प्रातः-काल स्मशानयात्रा निकली। गोखले के शव पर फूलों की वर्षा होने लगी। पूने के खास खास बाजारों से होती हुई यह यात्रा दोपहर के समय औंकारेश्वर की दहन-भूमि पर जा पहुँची। डा० भाण्डारकर और लोकमान्य तिलक ने समयोचित भाषण दिये। सब लोगों के नेत्रों से आंसू टपक रहे थे! गोखले का देह अग्नि को समर्पित कर दिया गया। लोकमान्य तिलक ने गोखले की प्रशंसा करते हुए कहा कि "भारतवर्ष का हीरा, महाराष्ट्र का नर-रत्न, वीरशिरोमणि आज इस संसार से चल बसा"।

जो मनुष्य संसार में उत्पन्न हुआ है उसका एक दिन मरना निश्चित है। राजा हो अथवा फकीर मृत्यु से कोई बच नहीं सकता। परन्तु महापुरुषों की बात निराली है। वे मर कर भी जीवित रहते हैं। उनकी विमल कीर्ति अमर है। उनके जीवन से संसार हमेशा शिक्षा ग्रहण करता रहता है। माननीय गोखले ऐसे ही महापुरुष थे। वे देश के लिए उत्पन्न हुए थे और देश

के लिए मरे। उनका जीवन संसार के लिए आदर्श है।

माननीय गोखले की अकाल मृत्यु से भारत-वर्ष में ही नहीं बल्कि समस्त ब्रिटिश साम्राज्य में शोक छा गया। नगर नगर में शोक सभाएं हुईं। स्कूल, कालेज और कचहरियां बंद हो गईं। समाचार पत्रों ने उनके जीवन पर बड़े बड़े लेख लिखे राजा और प्रजा दोनों उनकी मृत्यु से दुखी हुए। भारत-मंत्री, वाइसराय आदि बड़े बड़े सरकारी अधिकारियों ने शोक-प्रदर्शक तार भेजे। भारत-वासियों के दुःख का क्या कहना है। गोखले जैसे देश भक्त की मृत्यु पर कौन न रोया होगा ? माननीय गोखले साधु पुरुष थे। सरकार और जनता को वे समान प्रिय थे। दोनों का उनपर पूर्ण विश्वास था। प्रायः देखा गया है कि जो कट्टर देशभक्त होते हैं वे राजद्रोही कहलाते हैं और जो राजभक्त होते हैं वे देश-द्रोही कहलाते हैं। परन्तु माननीय गोखले की यही विशेषता है कि वे सच्चे देशभक्त तथा राजभक्त थे। जैसा सम्मान गोखले को सरकार और जनता से मिला वैसा और शायद ही किसी राजनीतिज्ञ को मिला हो।

गोखले कोई रईस या रियासतदार नहीं थे। उनका जन्म एक गरीब घर में हुआ था। केवल परिश्रम, उद्योग और योग्यता के बल पर उन्होंने वह पद और सम्मान प्राप्त किया जो राजा-महाराजाओं को भी मिलना कठिन है। १८ वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने देश-सेवा का व्रत ले लिया था। तीस वर्ष तक उन्होंने देश की अनेक प्रकार सेवा की। देश और जाति को संसार के सामने ऊंचा उठाया। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ४९ वर्ष की थी।

'प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास उस देश के महापुरुषों का जीवन-चरित्र है।' गोखले महापुरुष थे। उनका जीवन स्वार्थत्याग और सेवा का जीवन है। भारतवर्ष के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। उनका सबसे बड़ा स्मारक भारत-सेवक-समिति है जिसकी स्थापना उन्होंने स्वयं की थी। महात्मा गोखले का जीवन-चरित्र प्रत्येक भारतीय बालक के लिए आदर्श है। यदि हम उनके गुणों को अपनायेंगे तो हमारी छिपी हुई शक्तियां विकसित होंगी और हम देश और जाति की सेवा कर अपना जीवन सफल बना सकेंगे।